नंदन पार्क

हिन्दी ADDA

अंजना वर्मा

नंदन पार्क

इस बार जोर की ठंड पड़ रही थी और सूरज भी कोहरे की लिहाफ ओढ़ कर सो गया था। कहाँ सब सोच रहे थे कि अब ठंड चली गई। समय भी तो उसके जाने का हो गया था, पर अब जाते-जाते वह अपना असली चेहरा दिखा रही थी। मेहनतकश लोगों में जवान लोग तो ठीक थे, बूढ़े और बच्चों के लिए मुश्किल हो गई थी। कई बुजुर्ग, पेड़ की पीली पत्तियों की तरह चुपचाप खिसक गए तो कई बूढ़े लोगों ने खाट पकड़ ली। इसी ठंड में हल्की बारिश भी शुरू हो गई थी। लगातार दो दिनों से फूही बरसती रही। एक दिन छूटी भी तो तापमान नहीं बढ़ा। शंकर की माँ भी ठंड के कारण बीमार पड़ गई और

उसका खाना-पीना सब छूट गया। जब वह खाँसने लगती तो खाँसते-खाँसते बेदम हो जाती। चौबीसों घंटे खाट के पास बोरसी लेकर बैठी रहती, क्योंकि उसे लगता था कि ठंडा उसकी हड्डियों में समा गया है। बोरसी न रहे तो उसकी जान ही निकल जाए!

मुहल्ले वालों ने ठंड से निजात पाने के लिए सड़क के किनारे अलाव लगा लिया था। सवेरे-शाम वह धुधुआती हुई जल उठती। लकड़ी न रहती तो टायर, कूड़ा कुछ भी डाल दिया जाता। जो आता वह वहाँ बैठ जाता।

शंकर पेंटर था और यही काम करते हुए अपने परिवार की गाड़ी खींच रहा था। खर्च की लगाम पकड़े रहता कि वह नियंत्रण से बाहर न हो जाए। हफ्ते-भर से वह घर में बैठा हुआ था। मौसम सही रहता तो वह अपने काम पर होता। पर ऐसे मौसम में जब सूरज के दर्शन न हों, काम कौन करवाता?

इसी ठंड में एक दिन वह पान-गुटखा खरीदने के लिए दुकान तक गया था - दोनों हाथ अपनी बगल में दबाए हुए, टोपी के ऊपर से मफलर बाँधे हुए ठंड से जैसे लड़ता हुआ। दुकान पर उसकी भेंट संजय से हो गई तो संजय ने चुटकी ली, क्यों शंकर? तू बोल रहा था न कि जाड़ा चला गया? यह क्या है? उस दिन जब तू चाची के लिए स्वेटर खरीद रहा था तो मैंने कहा था न कि अपने बच्चों के लिए भी स्वेटर खरीद दे तो तू यही कहकर टाल गया कि ठंड तो अब जा रही है। देख, कैसी ठंड घिर आई है। टीवी में बोल रहा था कि तापमान चार डिग्री तक पहुँच गया हैं। देख, वह दुगुने जोश के साथ लौट आई है।"

यह सुनकर शंकर झेंपते हुए बोला, "आई है तो रहेगी थोड़े ही न? अब कल से ही जाड़ा खत्म होने लगेगा, देखना।"

उसके बोलने का अंदाज ऐसा था कि संजय मुस्कुराने लगा और उसके साथ-साथ दुकानदार भी। गुटखे का आदी शंकर कुछ गुटखे के पैकेट लेकर चलता बना।

पान-गुटखे की दुकान से बाएँ ओर जो सड़क जाती थी, उसमें कामगार लोग रहते थे। उसकी दाएँ ओर की सड़क पर मध्यवर्गीय लोगों के मकान थे। उसी कतार में कुछ अपार संपदा से भरे धनाढ्यों के घर भी थे। बीच में एक पार्क था, जिसे पार्क नहीं मैदान ही कहना चाहिए। वह जमीन पार्क के लिए तो थी, पर अभी तक इस तरह की कोई शुरुआत न होने से कठोर बनी पसरी हुई थी। उस पर उगी हुई दूब शीत की मार झेलती हुई पीली और सूखी दिखाई देने लगी थी। इस पार्क में चहलकदमी करने वालों की कमी नहीं थी। सवेरे-सवेरे सैर या जॉगिंग करने वाले लोग इसका पूरा लाभ उठाते।

इसकी खुली हुई हवा में जी-भरकर साँसें लेते, कई लोग आकर शांति से बैठते, तो कई योगाभ्यास, व्यायाम वगैरह करते। इन सबसे अलग कुछ ऐसे लोग भी थे जो इस हरी-भरी जमीन पर कुछ नहीं करते, बल्कि अपनी मेहनत और अपना समय बचाने के लिए अपने कदमों से इसे तिरछा या सीधा नापकर जल्दी-से-जल्दी उस पार पहुँच जाते। ले-देकर यह दो मुहल्लों के बीच का इकलौता दुलारा मैदान था।

इसी मैदान से सटा मंत्री जी का आलीशान बंगला था जिसके अहाते में उनकी कई गाड़ियाँ लगी रहती थीं। द्वार पर सिक्युरिटी तैनात रहते और ऊँचे फाटक के बाहर सड़क के किनारे पैरवीकारों की रंग-बिरंगी गाड़ियाँ मंत्री जी की शान में चार चाँद लगातीं रहतीं।

आज कितने दिनों बाद चमकदार धूप निकली थी और एक वृहत पैरेसॉल की तरह आसमान में छा गई थी। इसके पसरते ही चारों ओर चहल-पहल शुरू हो गई। कई दिनों से कमरे और घरों में दुबके हुए लोग बाहर निकल आए। मेहनतकशों की गली की जवान औरतें कमर में पल्लू खोंसकर अपने बच्चों के कपड़े और पोतड़े धो-धोकर सूखने के लिए अलगनी पर डालने लगीं। सड़कों पर आवा-जाही बढ़ गई। इतने दिनों से शिथिल पड़ा यातायात आज अचानक सक्रिय हो उठा जिससे सड़कों पर वाहनों का जाम लग गया।

शंकर की माँ सूरज की किरणें देखते ही बिछावन से उठकर बाहर छज्जे के नीचे धूप में आकर बैठ गई। सर्दियों में धूप का पीछा करने की उसकी पुरानी आदत थी, इस तरह कि धूप खिसकने के साथ-साथ उसकी चटाई भी खिसकती जाती थी तब तक, जब तक कि सूरज डूब नहीं जाता। इस शहर में वह शंकर के बुलाने से आई थी नहीं तो वह नहीं आती, ऐसे बेस्ट की कोठरी में उसका दम घुटने लगता था।

दस बज रहे थे और शंकर अभी भी बिस्तर में था। कोई और दिन होता तो उसके हाथों में ब्रश होता और वह उदास दीवारों को रंगीन बनाता हुआ उन्हें हँसाने की कोशिश में लगा होता। आज बिस्तर में धूप की छुअन मिल गई थी उसे और वह गरमाया पड़ा हुआ था। इस सर्दी में बहुत दिनों बाद ऐसा सुख मिल रहा था, नहीं तो एक कंबल में करवट बदलते और शरीर को सिकोड़ते हुए रात बीत जाती थी।

उसकी बीवी पूजा ने उसे झिंझोड़कर जगाया, "उठो न? कब तक सोये रहोगे?"

"छोड़, सोने दे मुझे।" पूजा ने छोड़ दिया। सचमुच कितनी मुश्किल से उसे सोने का समय मिलता है। फिर काम शुरू हो जाएगा तो वह न ढंग से सो पाएगा, न खा पाएगा।

शंकर बिस्तर में पड़े-पड़े अपनी बंद पलकों से भी कमरे के भीतर-बाहर फैली रोशनी का जाएजा लेता रहा। आज धूप उसकी कोठरी की मटमैली दीवारों को चमकाने के बाद वहीं पैर पसारकर बैठ गई है - यह एहसास उसके भीतर ऊर्जा भर रहा था।

वह आराम से ग्यारह बजे सोकर उठा जबकि उसकी आँखें स्वतः खुल गई। उसने उठकर गुटखा का एक पाउच मुँह के हवाले किया। स्वेटर पहनकर मफलर बाँधते हुए बाहर जाने लगा तो पूजा ने कहा, "अरे-अरे! उठकर सीधे कहाँ चल दिए?"

"तो क्या यहीं बैठा रहूँ? जरा एक चक्कर लगाकर आता हूँ। कुछ काम-धंधे के बारे में भी पता कर लूँ।"

इसके बाद किसी जवाब की आशा किए बिना वह सीधे बाहर निकल गया। वह जाएगा और अपने दोस्तों-परिचितों से इधर-उधर की बातें करेगा। यह एक चक्कर लगाना व्यर्थ नहीं होता था। इस तरह घूमते-फिरते वह काम की तलाश करता था। कोई संगी-साथी बता ही देता था कि फलाँ जगह एक पेंटर की जरूरत है।

यह मुहल्ला ऐसा था कि लोगों के आधे काम तो सड़कों पर ही होते थे। लकड़ियाँ हैं तो सड़कों पर सूखेंगी। बच्चे हैं तो सड़कों पर खेलेंगे। औरतें बाल झाड़ेंगी तो सड़कों पर बैठकर। बड़ियों और पापड़ की खटिया भी सड़कों के किनारे आधी सड़क घेरती हुई बिछेगी। एक कोठरी में कितना जीवन समा सकता है?

अभी कुछ दूर आगे बढ़ा तो रामबाग वाली चाची दिखाई पड़ीं जो कई दिनों से बीमार चल रही थीं। आज उनकी भी खाट बाहर धूप में बिछी थी जिस पर वह बैठी हुई थीं।

शंकर ने कहा, "पैर लागूँ चाची? अब कैसी हो?"

पप्पू को देखकर चाची ने मुस्कुराने की कोशिश की, पर मुस्कुरा न सकीं, नहीं तो वह मुस्कुरातीं और आशीर्वादों की झड़ी लगा देतीं। वह बस इतना बोल सकीं, "ठीक हूँ बेटा। आज ही तो उठकर बैठी हूँ। कई दिनों से बीमार थी। बड़ी सेवा की मेरी बहुओं ने। बेटा तो मुझे दूध-रोटी खिलाए बिना काम पर जाता न था। इन्हीं सबकी सेवा से उठ बैठी हूँ।"

शंकर सुनकर भीतर-ही-भीतर मुस्कुराया। बात-बात में अपने बेटे और बहुओं की तारीफ करना चाची की आदत थी। इतना कहने के बाद वह हाँफने लगीं और चुप हो गई।

शंकर मैदान से होकर गुजरने लगा तो उसने देखा कि आज वहाँ बच्चों का क्रिकेट चल रहा है। मेहनतकश मुहल्ले के सारे बच्चे अपने तन पर पुराना-धुराना, सिर्फ कहने-भर को गरम कपड़ा डाले मैदान में डटे हुए थे। उसके दोनों बच्चे मोहित और रोहित भी थे उसी वेशभूषा में। मोहित ने लकड़ी के एक पट्टे को बल्ला बनाया हुआ था और रोहित समेत सभी बाल खिलाड़ियों ने अपना मोर्चा सँभाल रखा था। जोश और मस्ती में कोई कमी न थी। वह देर तक खड़ा देखता रहा। बड़े अच्छे लग रहे थे ये खेलते हुए बच्चे!

घर पहुँचा तो देखा माँ की चटाई आगे खिसक आई है। वह उस पर बैठी धूप सेंक रही थी। उसने हाथ बढ़ाकर कहा, "चल माँ! तुझे वहाँ मैदान में बैठा दूँ। वहाँ दिन-भर धूप सेंकना। पूरी देह गरमा जाएगी।" उसकी माँ ने कहा, "ना रे बाबा! अभी तो मुझसे एक कदम भी न चला जाएगा। और तू सवेरे-सवेरे उठकर कहाँ चला गया था?"

"वो थोड़ा काम के चक्कर में निकला था, माँ!

यहाँ बित्ते-भर धूप के लिए चक्कर काट रही है माँ... शंकर ने सोचा। गाँव में जब वह था तो पैसे की कमी जरूर थी, पर धूप, हवा, पानी और आसमान इफराद थे। रोशनी, हवा और आसमान का अनंत विस्तार था। तब वह नहीं समझता था कि ये चीजें सिमट भी सकती हैं और अब वह देख रहा था कि इनका सिमटना कैसा होता है?

जब भी गाँव याद आता गाँव के पेड़ जरूर याद आते। वे लीची के बगीचे और उनमें धमाचौकड़ी! लीची की सबसे ऊँची टहनियों पर चढ़ने वाला वही हुआ करता था और चंद खट्टी इमलियों के लिए इमली के भुतहा कहे जाने वाले पेड़ों पर भी वही चढ़ता था। एक बार तो उसने लीची की डालियों में छुपकर माँ को खूब रुलाया था। माँ ने स्कूल न जाने के लिए उसे पीटा था। बस वह भी गुस्साकर लीची के पेड़ पर चढ़ गया और डालियों में छुपकर बैठा रहा। उधर उसकी माँ उसे घर में और आस-पास न देखकर गाँव में ढूँढ़ने निकली।

गाँव के एक-एक बच्चे और सयाने से घर-घर में झाँक-झाँककर, रास्ते-पैरे में रोक-रोककर पूछती रही। घंटों भटकने के बाद जब वह न मिला और कोई सकारात्मक उत्तर भी नहीं आया तो उसी पेड़ के नीचे बैठकर सुबक-सुबककर रोने लगी आँचल से आँखे पोंछते हुए। तब शंकर से न रहा गया। उसने ऊपर से एक लीची तोड़कर माँ के सामने गिरायी। माँ ने चेहरा उठाकर ऊपर देखा तो वह हँस रहा था। इधर माँ हँसने के बजाय फिर बिगड़ गई और बोली, "तूने कितना हैरान किया मुझे? तुझे समझ में आया कि मुझ पर क्या बीतेगी? शैतान कहीं का।"

फिर दो पलों में ही गुस्सा गायब हो गया और वह कोमल आवाज में बोली, "आ, उतर आ। अब न मारूँगी तुझे... आ जा बेटा!"

वह उतरा तो माँ ने उसे कलेजे से लगा लिया, "ऐसे कहीं रूठते हैं? मेरी तो जान ही निकल गई थी। तू कहीं चला जाएगा तो मैं क्या करूँगी रे?" और वह रोने लगी थी। वह अपने हाथों से माँ के आँसू पोंछने लगा। "अच्छा, चल अब खा ले। अभी तक भूखा है तू!" माँ बोली।

और तब माँ ने जो अपने हाथों से उसे रोटी खिलाई तो वह आज तक नहीं भूला उन प्यार-भरे कौरों का स्वाद! ऐसे तो अक्सर माँ के हाथों से खाते हुए वह यही सोचता था कि कैसा भी खाना हो, माँ के हाथों से इतना स्वादिष्ट क्यों हो जाता है? एक दिन तो वह पूछ भी बैठा था, "क्या माँ, तुम्हारे हाथों से कोई रस निकलकर खाने में मिल जाता है क्या? तुम्हारे हाथ से खाना इतना स्वादिष्ट क्यों हो जाता है?

माँ ने हल्की-सी चपत उसके गाल पर लगाते हुए कहा, "धत पगले! कैसी बातें करता है!" और वह हँसने लगी थी।

गाँव में उसने जितना मौज किया, वह यही सोचता कि आज के जमाने में वह उसके बच्चों को नसीब नहीं होगा। वे जान भी न पाएँगे कि खुली हवा और खुली धरती में स्वच्छंद विचरने का आनंद क्या होता है? उसने अपने भीतर कितनी शुद्ध हवा और कितनी धूप भरी थी! नदी में नहा-नहाकर उसने अपनी त्वचा को कितना सींचा था जल से? धूल-मिट्टी से भी। काम की तलाश में जब वह इस शहर में आया था तो यही बात उसे सबसे अधिक अखरी थी। एक छोटे-से ऐसे बेस्ट के कमरे में रहना और माँ के लिए एक और कमरा लेना। इसी में तो उसकी आय का अधिकांश निकल जाता था। ऊपर से हर मौसम में तबाही।

वह सोचता गाँव में प्रकृति जो दुख देती है तो उसका निदान भी साथ में उपस्थित कर देती है। गर्मी है तो हवा-पानी है, जाड़ा है तो धूप और आग है। शहर की सुख-सुविधाएँ सिर्फ पैसे वालों के लिए है, गरीबों के लिए नहीं। पहले तो मन बिल्कुल उचाट हो जाता था, पर अब तो उसे इसी माँद में जीने की आदत हो गई थी। पर वह नहीं चाहता था कि यह अँधेरा माँद उसके बच्चों को मिले। वह तो पिता के निधन के कारण पूरा पढ़ नहीं पाया। परंतु वह अपने बच्चों को पढ़ाने का संकल्प ले चुका था।

पर कैसे होगा यह सब? उसने सोचा था कि मोहित ओर रोहित को अच्छे स्कूल में पढ़ाएगा। परंतु स्कूल की फीस ही सुनकर पीछे हट गया था। हजारों रुपये महीने के

खर्च हो जाएँगे। उस पर से जितना बड़ा स्कूल उतना ज्यादा ढीप-ढाप। एक बोरी किताबें, बढ़िया यूनिफॉर्म और तरह-तरह के ताम-झाम। ऊपर से समय-समय पर अभिभावकों से पैसे निकलवाने के लिए फरमान जारी हो जाएगा। उसका दिल बैठ गया था कि वह नहीं सकेगा। सरकारी स्कूल में पढ़ाए तो उल्टे कुछ पैसे भी मिल जाएँगे, साथ ही दिन का खाना मिलेगा सो अलग। अतः उसे सरकारी स्कूल में अपने बच्चों का नामांकन करवाना पड़ा था। ऐसे भी तो बच्चे पढ़ेंगे ही चाहे जैसा भी पढ़ें!

अब रोज ही मैदान में बच्चों की जमघट लगने-लगी। पर सूरज की किरणों से सुनहरे बने मैदान में इन बच्चों का खेलना-हँसना और चहकना वहाँ सैर करने वालों को जरा भी अच्छा नहीं लग रहा था। उन्हें लग रहा था कि मैदान की गरिमा कहीं भंग हो गई है।

रोज की तरह 'गंधा' मॉर्निंग वॉक के लिए निकले थे। घूमने के दौरान उन्हें मलिक मिल गए। अपने भारी-भरकम छह फुट्टे शरीर से टावर की तरह हिलते हुए वे मलिक के पास पहुँचे और हलो कहकर जाते हुए मलिक को रोका।

"हलो मिस्टर मलिक! इधर इस मैदान को देख रहे हैं न आप?"

"हाँ... क्या? क्या हुआ?"

"क्या आपको नहीं लगता कि ये मैदान अब कुछ डर्टी हो गया? पहले कैसा था और अब कैसा हो गया है?"

"हाँ-हाँ, राइट। ठीक कहते हैं आप। यही तो मैं भी सोच रहा था कि इसकी सूरत अब क्यों बदल गई है? हम...!" कहकर माथे पर बल देते हुए मलिक ने चारों ओर नजरें दौड़ाई।

"आजकल उस गली के लड़के दिन-भर मैदान पर कब्जा जमाए रहते हैं। उसी की वजह से ये गंदगी हो गई है। अपना तो अब इधर आने का मन नहीं करता है। ये यंग लोग ही अच्छे हैं जो सीधे जिम चले जाते हैं।" गंधा ने कहा। इस पर मलिक बोले... "अब हमारी उम्र तो जिम जाने की नहीं रही?" कहकर मलिक हँसे तो गंधा को भी साथ में हँसना पड़ा।

अब मैदान में खेलने वाले बच्चों के चेहरे जहाँ खिले-खिले दिखाई देने लगे, वहीं सैर करने वालों के चेहरों पर चिड़चिड़ाहट चस्पाँ हो गई। गंधा घूमते-घूमते अक्सर कह उठते, "शिट्... कोई जगह ही नहीं बची हमारे लिए।" कहकर मुँह बना लेते।

एक दिन घूमते हुए उन्होंने शशिकांत सिंह से कहा, "मंत्री जी के यहाँ तो आपका आना-जाना है न शशिकांत जी?"

शशिकांत सिंह ने कहा, "हाँ... पर क्यों पूछ रहे हैं?" वह भी टहल रहे थे।

"तो ऐसा कीजिए, उनसे कहिए कि इन लड़कों का यहाँ खेलना बंद करवाए ताकि हम साफ-सुथरी हवा में साँस ले सकें। और भई, ऐसे भी, उनके आलीशान बंगले के पास ऐसा हुजूम क्या अच्छा लगता है?"

शशिकांत सिंह न जाने क्या सोचते हुए कुछ पलों तक चुप रहा, फिर बोला, "ठीक है। एक बार मैं यह बात उनके कान पर डाल दूँगा। फिर उनकी समझ में जैसा आएगा, वे करेंगे।"

गंधा ने एकदम से घिघियाकर कहा, "हाँ, भाई! आप इतना कह देना तो काम हो जाएगा। ये मैदान साफ हो जाएगा और हमारा माहौल भी बिगड़ने से बच जाएगा। आखिर हमारे भी बच्चे हैं...।"

मंत्रीजी को भी सुबह-सुबह टहलने की आदत थी और वे भी उसी मैदान में टहलते थे अपने लाव-लश्कर के साथ। कई लोग उनके आगे-पीछे रहते। उसी समय बहुत सारी इधर-उधर की बातें होतीं। वे भी इस बात को देख रहे थे कि उनके बंगले के पास ये फटेहाल बच्चे भाग-दौड़ करते रहते हैं। पर यह तो साक्षात जनता थी। इसके विरुद्ध जाना उनके लिए संभव नहीं हो पा रहा था। सोच रहे थे कि कोई बहाना मिले तो कुछ करें।

एक दिन वे टहल रहे थे - आगे-आगे मंत्री जी, उनके अगल-बगल दो बंदूकधारी और साथ में उन्हीं के साथ कदम से कदम मिलाते हुए कई लोग। एक भीड़ ही चल रही थी। शशिकांत ने दूर से ही हाथ जोड़कर पूरी विनम्रता के साथ झुककर अभिवादन किया और उनकी मंडली में चलने लगा। वे किसी से कुछ कह रहे थे। जब चुप हुए तो शशिकांत ने कहा, "सर जी! आजकल इस मैदान में दिन-भर हल्ला-गुल्ला होता रहता है और गंदगी बिखरी रहती है।"

"हाँ, सो तो है।"

"वे कामगार बस्ती के लड़के चले आते हैं और लगते हैं क्रिकेट खेलने। मैंने उन्हें कितनी बार मना किया। मैंने कहा कि देखो, मंत्री जी के बंगले के सामने मत हल्ला करो। पर वे मानें तब न?"

"अच्छा? आपने उन्हें मना किया था?"

"हाँ, सर जी!"

मंत्री जी भीतर से प्रफुल्लित हुए कि बच्चों को हटाने का उपाय खुद ही निकल आया।

शशिकांत ने फिर कहा, "सर जी! इस मैदान को एक खूबसूरत पार्क बनवा दीजिए। इससे पूरी शांति हो जाएगी और पर्यावरण भी साफ-सुथरा हो जाएगा सो अलग।"

यह सुनकर मंत्री जी बोले, "शशिकांत जी! आपने ठीक कहा। मैं भी यही सोच रहा था। मैं इस दिशा में कुछ ठोस कदम उठाता हूँ। पर्यावरण को शुद्ध रखना बहुत जरूरी है।"

इसके बाद मुश्किल से एक महीना बीता होगा कि एक दिन उस मैदान में कई लोग आ गए। वहाँ खेलते हुए बच्चों को वहाँ से हटने के लिए कहा गया। बच्चे मायूस होकर एक ओर खड़े हो गए और सहमे-सहमे देखने लगे कि अब यहाँ क्या होने जा रहा है? काम शुरू हो गया। कुछ लोग सफाई करने लगे। चारो ओर फेंसिंग की जाने लगी। फिर कुछ दिनों बाद एक हेड माली अपने साथ लुभावनी तस्वीरों वाली बागवानी की अँग्रेजी किताब लेकर आया। उसी के निर्देशन में कई लोग क्यारियाँ बनाने लगे।

बच्चे अभी भी आते और गुमसुम होकर देखते। किसी की हिम्मत नहीं होती थी कुछ पूछने की। उनका प्यारा मैदान एक पार्क बनने की प्रक्रिया में था।

वे रोज आते और देखकर चले जाते। पुरानी घास हटाकर विदेशी घास रोपी गई। क्यारियाँ बन गई तो उनमें फूलों के नन्हें-नन्हें पौधे लगा दिए गए। उसके बाद रोज कई-कई माली फूलों को सींचते और गोड़ते हुए दिखाई देते। फिर एक दिन एक बैनर भी लगा दिया गया - नंदन पार्क।

https://www.hindiadda.com/nandan-park/